28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 818

जनपदीय अध्ययन की आँख

वासुदेव शरण अग्रवाल

भारत जनपदों का देश है। ग्रामों के समूह जनपद हैं। गाँवों और जनपदों का ताँता हमारे चारों ओर फैला हुआ है और इस भूमि के अधिकांश जन गाँवों और जनपदों में ही बसे हुए हैं। गाँव-बस्तियाँ हमारी संस्कृति की धात्री हैं गाँव सच्चे अर्थों में पृथ्वी के पुत्र हैं। गाँव के जीवन की जड़ें धरती का आश्रय पाकर पनपती हैं। गाँवों में जन के जीवन को टिकाऊ आधार मिलता है। शहरों का जीवन उखड़ा हुआ जान पड़ता है। जनपदों का जीवन हज़ारों वर्षों की अटूट परम्परा को लिए हुए है। गाँवों में जन की सत्ता है, नगर राजाओं की क्रीड़ा-भूमि रहे हैं। जन की सत्ता और महिमा एवं जन-जीवन की स्वाभाविक सरल निजरूपता जनपदों में सुरक्षित है जहाँ बाहरी अंकुशों से जीवन की प्राणदायिनी शक्ति पर कम प्रहार हुआ है। जनपदीय जीवन-स्थिति, शांति और अपनी ही मानसभूमि की अविचल टेक ढूँढ़ता है। इसके विपरीत पुर का जीवन धूम-धाम के नये ठाट रचता है। दोनों के दो पथ हैं। इतिहास के उतार-चढ़ाव में वे कभी एक-दूसरे से टकराते हैं, कभी मेल ढूँढ़ते हैं और फिर कभी एक-दूसरे से परे

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 819

हट जाते हैं। वैदिक काल से आजतक यही लहरिया गति चलती रही है। वैदिक युग प्राथमिक भूसन्निवेश का समय था, जब गाँवों और जनपदों में फैलकर जीवन के बीज बोये गये। वन और जंगल, नदियों के तट और संगम जीवन की किलकारी से लहलहा उठे। फिर साम्राज्यों का उदय हुआ और नंद-मौर्य युग में नगरों के केंद्र प्रभावशाली बन बैठे। गुप्त-युग में नगर और जनपदों ने एक-दूसरे के प्रति मैत्री का हाथ बढ़ाया, वह समन्वय का युग था, जनपदों ने अपने जीवन का मथा हुआ मक्खन पुरों की भेंट चढ़ाया और पुरों ने उपकृत होकर संस्कृति के वरदान से जनपदों को सँवारा। मध्यकालीन संस्कृति में पौरजानपद जीवन की धाराएँ फिर एक-दूसरे से हट गयीं और जनपदों की अपभ्रंश भाषा और जीवनशैली प्रधान रूप से आगे बढ़ी। नगरों में गुप्तकालीन संस्कृति की जो थाती बची थी वह अपने आप में ही घुलती रही, जनपदों से उसे नया प्राण मिलना बंद हो गया। अतएव मध्यकाल की काव्य-कला और संस्कृति नगरों के मूर्च्छित जीवन के बोझ से निष्प्राण दिखाई देती हैं। पौरजानपद समन्वय के युग में लिखे गये रघुवंश के पहले-दूसरे सर्गों में जितना जीवन है उसकी तुलना जब हम *नैषध चरित* और *विक्रमांकदेव चरित* काव्यों के वर्णनों से करते हैं तब हमें यह भेद स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मुसलमानों के आगमन से जनपदों ने फिर अपने अंगों को कछुए की तरह अपने आप में सिकोड़ लिया और वे उस सुरक्षित कोष के भीतर समय काटते रहे। शहरों में परदेशी सत्ता जमी और उसने जीवन के ढाँचे को बदला। उससे आगे अंग्रेज़ों की संस्कृति का प्रभाव भी शहरों पर ही सबसे अधिक हुआ। गाँव अपने वैभव की भेंट शहरों को चढ़ाते रहे, गाँवों को निचोड़कर शहरों का भस्मासुर आगे बढ़ता रहा। यह नियम है कि जब जन की सत्ता जागती है, तब जनपद समृद्ध बनते हैं; जब जन सो जाता है तब पुर विलास करते हैं। अतएव हमारे जीवन के पिछले दो सौ वर्षों में जनपदीय जीवन पर चारों ओर से लाचारी के बादल छा गये और उनके जीवन के सब स्रोत रुँध गये। अब फिर जनपदों के उत्थान का युग आया है। देश के महान् कंठ आज जनपदों की महिमा का गान करने के लिए खुले हैं। देश के राजनीतिक संघर्ष ने ग्रामों और जनपदों को आत्मसम्मान, आत्मप्रतिष्ठा और आत्ममहिमा के भाव से भर दिया है। पिछली भूचाली उथल-पुथल और महान् आंदोलन का सर्वव्यापी सूत्र एक ही पकड़ में आता है, अर्थात्—

साम्राज्यों का उदय हुआ और नंद-मौर्य युग में नगरों के केंद्र प्रभावशाली बन बैठे। गुप्त-युग में नगर और जनपदों ने एक-दूसरे के प्रति मैत्री का हाथ बढ़ाया, वह समन्वय का युग था, जनपदों ने अपने जीवन का मथा हुआ मक्खन पुरों की भेंट चढ़ाया और पुरों ने उपकृत होकर संस्कृति के वरदान से जनपदों को सँवारा।

जानपद जन की प्रतिष्ठा

आज कितने वर्षों के बाद हमने प्रियदर्शी अशोक के शब्दों को कान खोलकर सुना है और राष्ट्रीय उत्थान के लिए मूलमंत्र की भाँति उन्हें स्वीकार किया है। राजाओं की विहार-यात्राओं का अंत करके उसने एक नये प्रकार की धर्म-यात्राओं का आंदोलन चलाया था जिनका उद्देश्य था : *जानपदसा च जनसा दसने धमनुसथि च धम पलि पुछा च।* अर्थात्, जानपद जन का दर्शन, जानपद जन के लिए धर्म का सिखावन और जानपद जन के साथ मिलकर धर्मविषयक पूछ-ताछ।

इन तीन प्रमुख उद्देश्यों के द्वारा सम्राट ने जनता के नैतिक और धार्मिक जीवन एवं आचार-विचारों में परिवर्तन लाने का भारी प्रयत्न आरम्भ किया था।

अशोक की परिभाषा के अनुसार सारा मानवी जीवन जिन सामाजिक और नीति नियमों से बँधा है, वे धर्म हैं। अतएव धर्म विषयक और आचार और विचारों को सुधारकर समस्त जन-

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 820

समुदाय के जीवन को ऊपर उठाने की योजना अशोक ने की थी। उसके मन में जब यह विचार आया होगा तब निश्चय ही उसका ध्यान देश की उस कोटानुकोटि जनता की ओर गया होगा जो सच्चा भारतवर्ष था। वह जनता गाँवों में बसती थी। आज अनेक शताब्दियों का चक्र घूम जाने पर भी भारत माता ग्रामवासिनी ही बनी हुई हैं। इसी ग्रामवासिनी गर्वीली जनता का दर्शन, सिखावन और परिपृच्छा (पूछ-ताछ) जनपदीय अध्ययन का निचोड़ है। अपना ध्येय और उद्देश्य निश्चित करके अशोक ने एक पैर और आगे बढ़ाया।

हेवं ममा लजूका कटा जानपदस हितसुखाये येन एते अभीता अस्वथ संतं अविमना कंमानि पवतयेवूति। अर्थात् मैंने राजकर्मचारी नियुक्त किये जिनका कर्तव्य है कि जानपद जन का हित करें और उनके सुख की बढ़ती करें, जिससे गाँवों की जनता निडर और स्वस्थ होकर मन लगाती हुई अपने-अपने कामों को कर सके।

अपने राष्ट्रीय जीवन में अशोक की नीति को आज भरपूर अपनाने की आवश्यकता है। जनपद और ग्रामों का पुनर्निर्माण, वहाँ जीवन का अध्ययन और सच्चा ज्ञान हमें अपने पुनर्निर्माण के लिए ही करना अनिवार्य है। ग्रामवासिनी जनता के कल्याण में ही हम सबका कल्याण छिपा हुआ है। उसके हित-सुख के बिना हम सबका हित-सुख अपूर्ण है। जनपदीय अध्ययन देश की अपनी आवश्यकता की पूर्ति है। वह साहित्यिकों का विनोद नहीं। अबतक हमने विदेशियों से प्रीति या कुरुख करना सीखा था, हमने अपने आपसे प्यार करना अभी तक नहीं सीखा। हमारी वर्तमान शिक्षा-दीक्षा, विचार और आचार की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हम अपने भूले हुए जीवन से फिर से नाता जोड़ें, अपनी ही वस्तुओं और संख्याओं से अनुराग का नया पाठ पढ़ें। अपने आपको जानने से जिस आनंद का जन्म होता है वह ही हमें अब जीवन के पथ में आगे बढ़ा सकता है। जनपदीय अध्ययन राष्ट्रीय कार्यक्रम का हरावल दस्ता है। सब कार्यों से यह कार्य अपने महत्त्व और आवश्यकता में गुरुतर है। हमारी जनता के जीवन का जितना भी विस्तार है उस सबको जानने, पहचानने और फिर से जीवित करने का सशक्त व्यापार जनपदीय अध्ययन का उद्देश्य है। लोगों के बिछड़े हुए ध्यान को हम बार-बार इस आंदोलन द्वारा जनता के जीवन पर केंद्रित करना चाहते हैं। जनता ही हमारे उदीयमान राष्ट्र की महती देवता है। हमारे सब आयोजनों के मूल में और सब विचारों के केंद्र में जनता प्रतिष्ठित है। यह सत्य जनपदीय अध्ययन का मेरुदण्ड है। जनता के जीवन के साथ हमारी सहानुभूति और आत्मा जितनी दृढ़ होगी उतना ही अधिक हम जनपदीय अध्ययन की आवश्यकता को समझ पावेंगे।

जनपदीय अध्ययन राष्ट्रीय कार्यक्रम का हरावल दस्ता है। हमारी जनता के जीवन का जितना भी विस्तार है उस सबको जानने, पहचानने और फिर से जीवित करने का सशक्त व्यापार जनपदीय अध्ययन का उद्देश्य है। लोगों के बिछड़े हुए ध्यान को हम बार-बार इस आंदोलन द्वारा जनता के जीवन पर केंद्रित करना चाहते हैं।

जनपद जीवन के अनंत पहलुओं की लीलाभूमि है। खुली हुई पुस्तक के समान जनपदों का जीवन हमारे चारों ओर फैला हुआ है। पास गाँव और दूर देहातों में बसने वाला एक-एक व्यक्ति उस रहस्य-भरी पुस्तक के पृष्ठ हैं। यदि हम अपने आपको उस लिपि से परिचित कर लें जिस लिपि में गाँवों और जनपदों की अकथ कहानी पृथ्वी और आकाश के बीच में लिखी हुई है, तो हम सहज ही जनपदीय जीवन की मार्मिक कथा को पढ़ सकते हैं। प्रत्येक जानपद जन एक पृथ्वीपुत्र है। उसके लिए हमारे मन में श्रद्धा होनी चाहिए। हम उसे अपढ़, गँवार और अज्ञान रूप में जब देखने की धृष्टता करते हैं तो हम गाँव के जीवन में भरे हुए अर्थ को खो

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 821

देते हैं। जिस आँख से हमारे पूर्वजों ने ग्रामों और जनपदों को देखा था उसी श्रद्धा की आँख से हमें फिर देखना है और उनके नेत्रों में जो दर्शन की शक्ति थी उसको फिर से प्राप्त करना है। हम जब गाँवों को देखते हैं तो वे हमें नितांत अर्थशून्य और रुचिहीन दिखाई पड़ते हैं। परंतु हमारे पूर्वजों की चक्षुष्मत्ता जनपदों के विषय में बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, उनकी आँखों में अपरिमित अर्थ भरा पड़ा था। इस अर्थवत्ता को हमें फिर से प्राप्त करना है, न केवल अध्ययन के क्षेत्र में, वरन् वास्तविक जीवन के क्षेत्र में भी। यदि हम अपनी देखने की शक्ति को परिमार्जित कर सकें तो जनपद के जीवन का अनंत विस्तार हमारे सम्मुख प्रकट हो उठेगा। एक गेहूँ के पौधे के पास खड़े होकर जिस दिन हम पहली बार उसके साथ मित्रता का हाथ बढ़ाएँगे, उसी दिन हम उसकी निजवार्ता से परिचित होकर नया आनंद प्राप्त करेंगे।

किस प्रकार 'खोइद' रूप में गेहूँ का दाना जुड़ी हुई पत्तियों के साथ प्रथम जन्म लेता है, किस प्रकार नरई पड़ने से वह बड़ा होता है, किस प्रकार गमौदे के भीतर बाल के साथ घरिआएँ रहती हैं जो बढ़ने पर बाहर आ जाती हैं, और फिर किस प्रकार उन घरिआओं के भीतर मक्खन फूल बैठता है जब उसके भीतर का रस श्वेत दूध के रूप में बदलकर हमारे खेतों और जीवन को एक साथ लक्ष्मी के वरदान से भर देता है, मानो क्षीर सागर की पुत्री साक्षात् प्रकट होकर जनपदों में दर्शन देने आयी हो— यही गेहूँ की निज वार्ता है। यदि बर्फ़ीली हवा न बहे, बढ़िया समा हो, मोटी धरती हो और पानी लगा हो तो एक-एक गमौदा राष्ट्र के जीवन का बीमा लेकर अपने स्थान पर खड़ा हुआ स्वयं हँसता है और अन्य सबको प्रसन्न करता है। गेहूँ के पौधे का यह स्वरूप जनपदीय आँख की बढ़ी हुई शक्ति का एक छोटा-सा उदाहरण है। सुतिया-हँसली पहने हुए धान के पौधे जिनकी निगरती हुई बालें हवा के साथ झूलती हैं उसी प्रकार का दूसरा दृश्य उपस्थित करते हैं और इस प्रकार के न जाने कितने आनंदकारी प्रसंग जनपदीय जीवन में हमें प्रतिदिन देखने को मिल सकते हैं।

जनपदीय अध्ययन का विद्यार्थी तीर्थयात्री की तरह देहात में चला जाता है, उसके लिए चारों ओर शब्द और अर्थ के भण्डार खुले मिलते हैं। नये-नये शब्दों से वह अपनी झोली भरकर लौटता है। जनपदीय जीवन का एक पक्का नियम यह है कि वहाँ हर वस्तु के लिए शब्द हैं। उस क्षेत्र में जो भी वस्तु है उसका नाम अवश्य है। कार्यकर्ता को इस बात का दृढ़ विश्वास होना चाहिए। ठीक नाम को प्राप्त कर लेना उसकी अपनी योग्यता की कसौटी है। यदि हम इस सरल और स्वाभाविक ढंग से किसी देहाती व्यक्ति को बातों में ला सकेंगे तो उसकी शब्दावली का भंडार हमारे सामने आने लगेगा। उस समय हमें धैर्य के साथ अपने मन की चलनी से उन शब्दों को छान लेना चाहिए और बीच-बीच में हलके प्रश्नों के व्याज से चर्चा को आगे बढ़ाने में सहायता करनी चाहिए। जनपदीय व्यक्ति उस गौ के समान है जिसके थनों में मीठा दूध भरा रहता हो, किंतु उस दूध को पाने के लिए युक्तिपूर्वक दुहने की आवश्यकता है। गाँव का आदमी भारी प्रश्नों से उलझन में पड़ जाता है। उसके साथ बातचीत का ढंग नितांत सरल होना चाहिए और प्रश्नकर्ता को बराबर उसी के धरातल पर रहकर बातचीत चलानी चाहिए। यदि हम उस धरातल से ऊपर उठ जाएँगे तो बातचीत

जनपदीय व्यक्ति उस गौ के समान है जिसके थनों में मीठा दूध भरा रहता हो, किंतु उस दूध को पाने के लिए युक्तिपूर्वक दुहने की आवश्यकता है। गाँव का आदमी भारी प्रश्नों से उलझन में पड़ जाता है। उसके साथ बातचीत का ढंग नितांत सरल होना चाहिए और प्रश्नकर्ता को बराबर उसी के धरातल पर रहकर बातचीत चलानी चाहिए।

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 822

का प्रवाह टूट जाएगा। जनपदीय कार्यकर्ता को उचित है कि अपनी जानकारी को पीछे रखे और अपने संवाददाता की जानकारी का उचित समादर करे और आस्था के साथ उसके विषय में प्रश्न पूछे। प्रश्न करते समय यदि बीच में कहीं भूल या अटकाव हो तो उस भूले हुए प्रसंग को पीछे छोड़कर प्रश्नों का ताँता आगे बढ़ने देना चाहिए। बहुत सम्भव है कि अगली बातचीत के प्रसंग में पिछली भूल हाथ आ जाय और प्रश्नों की कड़ी पूरी हो जाए।

अहिछत्रा के चिम्मन कुम्हार की कृपा से बर्तन और खिलौने बनाने के लगभग सौ से ऊपर शब्द हमें प्राप्त हुए जिनकी पुरातत्त्वशास्त्र की दृष्टि से हमारे लिए बड़ी उपयोगिता और आवश्यकता थी। उससे हमने उस डोरे का नाम पूछा जिससे कुम्हार चाक पर से बर्तन को अलग करते हैं। उसने कहा उसे डोरा ही कहते हैं और कुछ नहीं। मन में हमें विश्वास न हुआ किंतु प्रकट रूप से बातों का क्रम चलाये रखा। थोड़ी देर में उसे स्वयं याद आया कि उस डोरे के लिए 'छैन' शब्द है। यह संस्कृत 'छेदन' प्रा. 'छेअन' का हिंदी रूप है और कुम्हारों की पुरानी परिभाषा को सामने लाता है। इसी प्रकार चाक के पास में पानी रखने की हाँडी के लिए भी 'चकैड़ी' शब्द प्राप्त हुआ जो मूल 'चक्र-भांडिका' से प्राकृत और अप्रभंश में विकसित होकर अपने वर्तमान रूप तक पहुँचा है। इसी प्रकार अंग्रेज़ी Lughandle के लिए चुदाँ शब्द प्राप्त हुआ। उसने अपनी परिभाषा में बताया कि चाक पर रखी हुई मिट्टी के 'गुल्ले' से तीन फेरे में बर्तन बन जाता है। अर्थात् पहले 'अँगूठा गड़ाकर फैलाना', फिर 'ऊपर को सूत कर सतर करना' और तब एक पोरा अंदर और एक पोरा बाहर रखकर पिटार बनाना और अंत में छैन से काट लेना। इस प्रकार की पारिभाषिक शब्दावली भाषा की वर्णन शक्ति को विकसित करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। जनपदीय जीवन से इसके सहस्रों उदाहरण प्राप्त किये जा सकते हैं। जब हमारी भाषा का संबंध जनपदों से जोड़ा जाएगा, तभी उसे नया प्राण और नयी शक्ति प्राप्त होगी। गाँवों की बोलियाँ हिंदी भाषा का वह सुरक्षित कोष हैं जिसके धन से वह अपने समस्त अभाव और दलिद्दर को मिटा सकती है।

पारिभाषिक शब्दावली भाषा की वर्णन शक्ति को विकसित करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। जब हमारी भाषा का संबंध जनपदों से जोड़ा जाएगा, तभी उसे नया प्राण और नयी शक्ति प्राप्त होगी। गाँवों की बोलियाँ हिंदी भाषा का वह सुरक्षित कोष हैं जिसके धन से वह अपने समस्त अभाव और दलिद्दर को मिटा सकती है।

जनपदों की परिभाषा लेकर गाँव के जीवन का वर्णन हमारे अध्ययन की बहुत बड़ी आवश्यकता है और इस काम को प्रत्येक कार्यकर्ता तुरंत हाथ में ले सकता है। जनपदीय अध्ययन को विकसित करने के तीन मुख्य द्वार हैं—

1. भूमि और भूमि से संबंधित वस्तुओं का अध्ययन।
2. भूमि पर बसने वाले जन का अध्ययन।
3. जन की संस्कृति या जीवन का अध्ययन।

भूमि, जन और संस्कृति रूपी त्रिकोण के भीतर सारा जीवन समाया हुआ है। इसी वर्गीकरण का आश्रय लेकर हम अपने अध्ययन की पगडण्डियों को बिना पारस्परिक संकर के निर्दिष्ट स्थान तक ले जा सकते हैं। भूमि संबंधी अध्ययन के अंतर्गत समस्त प्राकृतिक जगत् है जिसके विषय में कई सहस्र वर्षों से देश की जनता ने लगातार निरीक्षण और अनुभव के आधार पर बहुमूल्य ज्ञान एकत्र किया है। उसकी थाती देहाती जीवन में बहुत कुछ सुरक्षित है। अनेक प्रकार की मिट्टियों का और चट्टानों का वर्णन और उनके नाम, देश के कोने-कोने से एकत्र करने चाहिए। प्राकृतिक भूगोल के वर्णन के लिए भी शब्दावली जनपदों से ही प्राप्त करनी होगी। एक बार बम्बई की रेलयात्रा में चम्बल नदी के बाएँ किनारे पर दूर तक फैली हुई ऊँची-नीची धरती और कटावदार

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 823

कगार देखने को मिले। विचार हुआ कि इनका नाम अवश्य होना चाहिए। किंतु उस बार यह नाम प्राप्त न हुआ। दूसरी बार की यात्रा में सौभाग्य से एक जनपदीय सज्जन से, जो साथ यात्रा कर रहे थे, उस भौगोलिक विशेषता के लिए उपयुक्त शब्द प्राप्त हुआ। वहाँ की बोली में उन्हें चम्बल के 'बेहड़' कहते हैं। सहस्रों वर्षों से हमारी आँखें जिन वस्तुओं को देखती रही हैं उनका नामकरण न किया होता तो हमारे लिए यह लज्जा की बात होती। जहाँ कहीं भी कोई प्राकृतिक विशेषता भूमि, पर्वत अथवा नदी के विषय में है, वहाँ की स्थानीय बोली में उसके लिए शब्द होना ही चाहिए। इस साधारण नियम की सत्यता देशव्यापी है। दो शब्दों की सहायता के बिना पाठ्य पुस्तकों में हमारे प्राकृतिक भूगोल का वर्णन अधूरा रहता है। पहाड़ों में नदी के बर्फ़ीले उद्‌गम स्थान (अंग्रेज़ी ग्लेशियर) के लिए आज भी 'वाँक' शब्द प्रचलित है जो संस्कृत 'वक्र' से निकला है। साहित्य में नदी वक्र पारिभाषिक शब्द है। इसी प्रकार बर्फ़ीली नदी के साथ आने वाले कंकड़-पत्थर के ढेर के लिए जो बर्फ़ के गलकर बह आने पर नदी प्रवाह में पड़ा रह जाता है (अंग्रेज़ी मोरेन) पर्वतीय भाषा में 'दालो गालो' शब्द चालू है। मिट्टी, पानी और हवाओं का अध्ययन का भूमि संबंधी अध्ययन विशेष अंग है। जलाशय, मेघ और वृष्टि संबंधी कितना अधिक ज्ञान जनपदीय अध्ययन से प्राप्त किया जा सकता है। हमारे आकाश में समय-समय पर जो मेघ छा जाते हैं उनके बिजोने, घोरने और बरसने का जो अनंत सौंदर्य है और बहुविध प्रकार है उनके संबंध में उपयुक्त शब्दावली का संग्रह और प्रकाशन हमारे कंठ को वाणी देने के लिए आवश्यक है। *ऋतु संहार* लिखने वाले कवि के देश में आज ऋतुओं का वर्णन करने के लिए शब्दों का टोटा हो यह तो विडम्बना ही है। ऋतु-ऋतु में बहने वाली हवाओं के नाम और उनके प्रशांत और प्रचण्ड रूपों की व्याख्या जनपदीय जीवन का एक अत्यंत मनोहर पक्ष है। फागुन मास में चलने वाला फगुनाहटा अपने हड़कंपी शीत से मनुष्यों में कँपकँपी उत्पन्न करता हुआ पेड़ों को झोर डालता है और सारे पत्तों का ढेर पृथ्वी पर आ पड़ता है। दक्षिण से चलने वाली दखिनिहा वायु न बहुत गर्म, न बहुत ठंडी भारतीय ऋतु चक्र की एक निजी विशेषता है। वैशाख से आधे जेठ तक चलने वाली पच्छियाँ या पछुआ अपने समय से आती है और फूहड़ स्त्रियों के आँगन का कूड़ा-करकट बटोर ले जाती है। आधे जेठ से पुरवइया हमारे आकाश को छा लेती है जिसके विषय में कहा जाता है— *भुइयाँ लोट चलै पुरवाई, तब जानहु बरखा ऋतु आई।* भूमि में लेटती हुई धूल उड़ाती हुई यह तेज वायु सबको हिला डालती है। किंतु यही पुरवाई यदि चैत के महीने में चलती है तो आम 'लसिया' जाता है और बौर नष्ट हो जाता है, लेकिन चैत की पुरवाई महुए के लिए वरदान है। महुए और आम के अभिन्न सखा जानपद जन के जीवन में पुरवइया का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। जनपद वधुएँ इसके स्वागत में गाती हैं— तनिक चलो हे पुरवा बहिन, हमें मेह की चाह लग रही है,

चय नेक चलो परवा भाण
मेहारी म्हारे लग रही चाय।

इसी प्रकार पानी को लाने वाली शूकरी हवा है जो उत्तर की ओर से चलती है और जिसके लिए राजस्थानी लोकगीतों में स्वागत का गान गाया गया है।

सूरया, उड़ी बादली ल्यायी रे

हमारे आकाश में समय-समय पर जो मेघ छा जाते हैं उनके बिजोने, घोरने और बरसने का जो अनंत सौंदर्य है और बहुविध प्रकार है उनके संबंध में उपयुक्त शब्दावली का संग्रह और प्रकाशन हमारे कंठ को वाणी देने के लिए आवश्यक है। *ऋतु संहार* लिखने वाले कवि के देश में आज ऋतुओं का वर्णन करने के लिए शब्दों का टोटा हो यह तो विडम्बना ही है।

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 824

हे सूरया, उड़ना और बादली लाना,
अथवा—

रीती मति आए, पाणी भर लाये
तों सूरया के संग आवे बदली।

अर्थात्—हे बदली रीती मत आइयो, पानी भर लाइयो, सूरया के संग आइयो।

हमारे आकाश को सबसे प्रचंड वायु हउहरा (सं. हविधारक) है जो ठेठ गर्मी में दक्खिन-पच्छिम के नैऋत्य कोण से जेठ मास में चलती है। यह रेगिस्तानी हवा प्रचण्ड लू के रूप में तीन दिन तक बहती रहती है, जिसकी लपटों से चिड़िया, चील तक झुलसकर गिर पड़ती हैं। यह वायु रेगिस्तानी समूम की तरह है जो अरबों के देश में काफ़ी बदनाम है। मेघ और वायु के घनिष्ठ संबंध पर जनपदीय अध्ययन से अच्छा प्रकाश पड़ सकता है। देहाती उक्तियों में इस विषय की अच्छी सामग्री मिलती है।

पशु-पक्षियों और वनस्पतियों का अध्ययन भी जनपदीय अध्ययन का एक विशेष अंग है। अनेक प्रकार के तृण, लता और वनस्पतियों से हमारे जंगल भरे हुए हैं। एक-एक घास, बूटी या रूखड़ी के पास जाकर हमारे पूर्वजों ने उसका विशेष अध्ययन किया और उसका नामकरण किया। आज भी भारतीय आयुर्वेद के वनस्पति संबंधी नामों में एक अपूर्व कविता पायी जाती है। शंखपुष्पी, स्वर्णक्षीरी, काकजंघा, सर्पाक्षी, हंसपदी आदि नाम कविता के चरण हैं। प्रत्येक जनपद का सांगोपांग अध्ययन वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से पूरा होना आवश्यक है। इस विषय में गाँवों और जंगलों के रहने वाले व्यक्ति हमारी सबसे अधिक सहायता कर सकते हैं। देशी नामों को प्राप्त करके उनके संस्कृत और अंग्रेज़ी पर्याय भी ढूँढ़ने चाहिए। यह काम कुछ सुलझे हुए ढँग से जनपदीय मण्डल की केंद्रवर्ती संस्था में किया जा सकता है। वृक्ष वनस्पति के जीवन से, उनके फूलने-फलने के क्रम से हम चाहें तो वर्षभर का तिथिक्रम बना सकते हैं। हमारी पाठ्य-पुस्तकें इस विषय में प्रचार का सबसे अच्छा साधन बनाई जा सकती हैं। आठ वर्ष की आयु से छोटे बच्चों को आस-पास उगने वाले फूलों और पेड़ों का परिचय कराना आवश्यक है और चौथी कक्षा से दसवीं कक्षा तक तो यह परिचय क्रमिक ढँग से अवश्य पढ़ाया जाना चाहिए। इससे देहात की प्रारम्भिक शालाओं में अपने जीवन के प्रति एक नयी रुचि और नया आनंद पैदा होगा। किंतु यह ध्यान रखना होगा कि ज्ञान की यह नयी सामग्री परीक्षा का बोझ लेकर कहीं हमारे भीतर प्रवेश न कर पावे। खिली धूप में गाने वाले स्वतंत्र पक्षी की तरह इसे हमारे ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए। अध्ययन का यही दृष्टिकोण पक्षियों के विषय में भी सत्य है। देहात के जीवन में रंग-बिरंगे पक्षियों का विशेष स्थान है। वहाँ कहते हैं कि भगवान् की रचना में साढ़े तीन दल होते हैं।

1. चींटी दल
2. टीढ़ी दल
3. चिड़ी दल

आधे दल में पोह और मानस हैं। पक्षियों के आने-जाने और ठहरने के कार्यक्रम से भी हम वर्षभर का पंचांग निश्चित कर सकते हैं। छोटा-सा सफ़ेद ममोला पक्षी जो देखने में बहुत सुंदर लगता है जाड़े का अंत होते-होते चल देता है। उसके जाने पर कोयल वसंत की उष्णता लेकर आती है और स्वयं उस समय हमसे बिदा लेती है जब तुरई में फूल फूलता है। ऋतु-ऋतु और प्रत्येक मास में हमारे घरों में, वाटिकाओं और जंगलों में जो पक्षी उतरते हैं उनकी निजवार्ता और घरवार्ता अत्यंत रोचक है जिससे परिचित होना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हमारे निर्मल जलाशयों में क्रीड़ा करने वाले हंस और क्रौंच पक्षी किस समय यहाँ से चले जाते हैं, कहाँ जाते हैं और कब लौटते हैं, इसकी पहचान हमारी आँख में होनी चाहिए। इस प्रकार के सूक्ष्म निरीक्षण के द्वारा डगलस डेवर ने एक उपयोगी पुस्तक तैयार की थी जिसका नाम है *बर्ड-कैलेंडर ऑफ़ नार्थ इण्डिया*। पक्षियों का अध्ययन हमारे देश में बहुत पुराना है। वैदिक साहित्य में पक्षियों का ज्ञान रखने वाले विद्वान को वायोविद्यिक कहा गया है जिसका रूपांतर पतंजलि के महाभाष्य में वायसविद्यिक पाया जाता है। राजसूय यज्ञ के अंत में अनेक विद्याओं के जानने वाले विद्वानों की

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 825

एक सभा लगती थी जिसमें वे लोग अपने-अपने शास्त्र का परिचय राजा को देते थे। व्यापक रूप में पक्षी भी राजा की प्रजा हैं और उनकी रक्षा का भार भी उस पर है। इस सभा में पक्षी-विशेषज्ञ देश के पक्षियों का परिचय राजा को देते थे। इस देश में पक्षियों के प्रति जो एक हार्दिक अनुराग की भावना छोटे-बड़े सब में पायी जाती है वह संसार में अन्य किसी देश में नहीं मिलती जहाँ आकाश के इन वरद पुत्रों को हर समय तमंचे का खटका बना रहता है। पक्षियों के प्रति इस जन्मसिद्ध सौहार्द का संवर्द्धन हमें आगे भी करना चाहिए। इस देश की विशाल भूमि में देखने और प्रशंसा करने की जो अतुलित सामग्री है उस सबके प्रति मन में स्वागत का भाव रखना जनपदीय अध्ययन की विशेषता है। भूमि माता है और मैं उसका पुत्र हूँ (*माता भूमिः पुत्रोअहम पृथिव्याः*) यह जनपदीय भावना का मूल सूत्र है।

जिस वस्तु का अपनी भूमि के साथ संबंध है, उसे ही भली प्रकार जानना और प्यार करना यह हमारा कर्त्तव्य है और अपने राष्ट्र के नवाभ्युत्थान में उसके उद्धार और उन्नति का उपाय करना यह उस कर्त्तव्य का आवश्यक परिणाम है। उत्तर से दक्षिण तक देश में फैली हुई गायों की नस्लें, घोड़े, हाथी, भेड़-बकरी संबंधी वंश-वृद्धि और मंगल योजना के विषय में हमें रुचि होनी चाहिए। जब हम सुनते हैं कि इटावा प्रदेश की जमनापारी बकरी दूध देने में संसार भर में सबसे बढ़कर है, एवं जब हमें ज्ञात होता है कि लखनऊ के असील मुर्गों ने, जिनकी देह की नसें तारकशी की तरह जान पड़ती हैं, ब्राजील में जाकर कुश्ती मारी है तो हमें सच्चा गर्व होता है। इसका कारण मातृ-भूमि का वह अखण्ड संबंध है जो हमें दूसरे पृथ्वी-पुत्रों के साथ मिलाता है।

जनपदीय अध्ययन का अत्यंत रोचक विषय मनुष्य स्वयं है। मनुष्य के विषय में यहाँ हम जितनी जानकारी प्राप्त कर सकें, करनी चाहिए। ज्ञान साधन का प्रत्येक नया दृष्टिकोण जिसे हम विकसित कर सकें, मन-विषयक हमारी रुचि को अधिक गम्भीर और रसमय बनाता है। इस देश में सैकड़ों प्रकार के मनुष्य बसते हैं, उनकी रहन-सहन, उनके रीति-रिवाज़, उनके आचार-विचार, उनकी शारीरिक विशेषताएँ, उनकी उत्पत्ति और वृद्धि, उनके संस्कार और धर्म, उनके नृत्य और गीत, उनके पर्व और उत्सव एवं भाँति-भाँति के आमोद-प्रमोद, उनके बीच के विशेष गुण एवं स्वभाव, उनके वेष और आभूषण, उनके निजी नाम एवं स्थान-नामों के विषय में जानने और खोज करने की रुचि और शक्ति हमें उत्पन्न करनी चाहिए, यही जनपदीय अध्ययन की सच्ची आँख है। इस आँख में जितना तेज़ आता जाएगा उतने ही अधिक अर्थ को हम देखने लगेंगे।

मनुष्य हमारे जनपदीय मण्डल के केंद्र में है। उसका आसन ऊँचा है। स्वयं मनुष्य होने के नाते सम्पूर्ण मानवीय जीवन में हमें गहरी रुचि होनी चाहिए। बीते हुए अनेक युगों की परम्परा वर्तमान पीढ़ी के मनुष्य में साक्षात् प्रकट होती है। आने वाले भविष्य का निर्माता भी यही मनुष्य है।

भगवान् वेदव्यास की बताई परिभाषा के अनुसार यहाँ मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि
नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।

मनुष्य हमारे जनपदीय मण्डल के केंद्र में है। उसका आसन ऊँचा है। स्वयं मनुष्य होने के नाते सम्पूर्ण मानवीय जीवन में हमें गहरी रुचि होनी चाहिए। बीते हुए अनेक युगों की परम्परा वर्तमान पीढ़ी के मनुष्य में साक्षात् प्रकट होती है। आने वाले भविष्य का निर्माता भी यही मनुष्य है। हमारे पूर्वजों ने कर्म, वाणी, और मन से जो कुछ भी सिद्धि प्राप्त की उस सबकी थाती वर्तमान मानव-जीवन को प्राप्त हुई है। इतने गम्भीर उत्तराधिकार को लिए हुए जो मनुष्य हमारे सन्मुख है उसकी विचित्रता कहने की नहीं, अनुभव करने की वस्तु है। मानव-जीवन के

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 826

वर्तमान ताने-बाने के भीतर शताब्दियों और सहस्राब्दियों के सूत्र ओत-प्रोत हैं। विचारों और संस्थाओं की तहें क्रमानुसार एक-दूसरे के ऊपर जमी हुई मिलेंगी और इन पर्तों को यदि हम सावधानी के साथ अलग कर सकेंगे तो हमें अनेक युगों का संस्कृतियों का विचित्र आदान-प्रदान एवं समन्वय दिखाई देगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि भारतवर्ष समन्वय-प्रधान देश है। समन्वय-धर्म ही यहाँ की सार्वभौम संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। अनेक विभिन्न संस्कृतियों के अनमिल और अनगढ़ विचार और व्यवहार यहाँ एक-दूसरे से टकराते रहे हैं और अंत में सहिष्णुता और समन्वय के मार्ग से सहानुभूतिपूर्वक एक साथ रहना सीखे हैं। परस्पर आदान-प्रदान के द्वारा जीवन को ढालने की विलक्षण कला इस देश में पायी जाती है। जिस प्रकार हिमालय के शिलाखण्डों को चूर्ण करके गंगा की शाश्वत धारा ने उत्तरापथ की भूमि का निर्माण किया है जिसके रजकण एक-दूसरे से सटकर अभिन्न बन गये हैं और जिनमें भेद की अपेक्षा साम्य अधिक है। कुछ उसी प्रकार का एकीकरण भारतीय संस्कृति के प्रवाह में पली हुई जातियों में हुआ है। किसी समय इस देश के विस्तृत भू-भाग में निषाद जाति का बसेरा था, उसी जाति के एक विशेष व्यक्ति गुह निषाद की कथा हमारे रामचरित से संबंधित है। गुह निषाद के वंशज आज भी अवध के उत्तर-पूर्वी भाग में बसे हुए हैं किंतु आज उनकी संस्कृति हिंदू धर्म की विशाल संस्कृति के साथ घुल मिलकर एक बन चुकी है। जितना कुछ उनका अपना व्यक्तित्व था वे उसे छोड़ने के लिए बाधित नहीं हुए, उसकी रक्षा करके भी वे अपने से ऊँची संस्कृति के अंक में प्रतिपालित होकर उसके साथ एक हो गये। समन्वय की इसी प्रक्रिया का नाम हिंदूकरण पद्धति है। क्या जनपद और क्या नगर, इस प्रकार के समन्वय का जाल सर्वत्र बुना हुआ है किंतु जनपदों की प्रशांत गोद में इस प्रकार के प्रीति सम्पन्न समन्वय का अध्ययन विशेष रूप से किया जा सकता है, जहाँ आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से विषमताएँ एक मर्यादा के भीतर रहती हैं।

अध्ययन के जिन दृष्टिकोणों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनमें से जिस किसी को भी हम लें हमारे सामने रोचक सामग्री का भंडार खुल जाता है। उदाहरण के लिए, किसी गाँव में भिन्न-भिन्न श्रेणियों के मनुष्यों के व्यक्तिवाची नामों को ही हम लें, तो उन नामों में संस्कृत, प्राकृत, अप्रभंश और देशी शब्द रूपों का रोचक सम्मिश्रण दिखाई पड़ेगा। गाँव का सिब्बा नाम वही है जिसका संस्कृत रूपांतर शिवदत्त या शिव के साथ अन्य कोई पद जोड़ने से बनता है। व्याकरण के ठोस नियमों के अनुसार उत्तर पद का लोप कर नाम को छोटा बनाने की प्रथा लगभग ढाई सहस्र वर्ष पूर्व अस्तित्व में आ चुकी थी। उत्तर पद के लोप का सूचक 'क' प्रत्यय जोड़ने की बात वैयाकरण बताते हैं। इसके अनुसार शिवदत्त का रूप शिवक बनता है। शिवक का प्राकृत में सिवअ और उसी का अपभ्रंश में सिब्बा रूप हुआ। गाँवों का कल्लू या कलुआ संस्कृत कल्याणचंद्र या कल्याणदत्त का ही रूपांतर है। कलय या कल्ल से उक प्रत्यय जोड़कर कल्लुक रूप बनता था जिसका प्राकृत एवं अपभ्रंश में कल्लुव या कलुआ होता है, अथवा इससे ही कल्लू एवं कालू रूप बनते हैं। अपभ्रंश भाषा के युग में इस प्रकार के नामों की बाढ़-सी आ गयी थी और प्राय: सभी नामों को अपभ्रंश का चोला पहनना पड़ा था। नानक जैसा

किसी गाँव में भिन्न-भिन्न श्रेणियों के मनुष्यों के व्यक्तिवाची नामों को ही हम लें, तो उन नामों में संस्कृत, प्राकृत, अप्रभंश और देशी शब्द रूपों का रोचक सम्मिश्रण दिखाई पड़ेगा। गाँव का सिब्बा नाम वही है जिसका संस्कृत रूपांतर शिवदत्त या शिव के साथ अन्य कोई पद जोड़ने से बनता है।

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 827

सरल नाम प्राकृत और अप्रभंश के माध्यम से मूल संस्कृत ज्ञानदत्त से बना है। ज्ञान, प्रा. णाण, हिंदी नान+क ये इस विकास के तीन चरण हैं। इसी कारण मुग्ध से मूधा, स्निग्ध से नीधा, विपुलचंद्र से बूलचंद्र आदि नाम हैं। ठेठ गँवारू नामों का भी अपना इतिहास होता है। छीतर फिक्कू, पवारू नामों से पीछे भी पुराने विश्वासों का रहस्य छिपा है जो भाषा-शास्त्र और जन-विश्वासों की सहायता से समझा जा सकता है। मनुष्य नामों की तरह जनपदीय जीवन का दूसरा विस्तृत विषय स्थान नाम है। प्रत्येक गाँव, खेड़े, नगले के नाम के पीछे भाषा-शास्त्र से मिश्रित सामाजिक इतिहास का कोई-न-कोई हेतु है। न्यग्रोध ग्राम से निगोहा, प्लक्ष गाँव से पिलखुवा, गँवकुलिका से गंधौली, सिद्धकुलिका या सिद्धपल्ली से सिधौली, मिहिरकुलिका या मिहिरपल्ली से मैहरौली, आदि नाम बनते हैं। गाँवों में तो प्रत्येक खेत तक के नाम मिलते हैं, जिनके साथ स्थानीय इतिहास पिरोया रहता है। शीघ्र ही समय आयेगा जब हम स्थान नाम परिषदों का संगठन करके इन नामों की जाँच पड़ताल करने लगेंगे। दूसरे देशों में इस प्रकार की छानबीन करने वाली परिषदों के बड़े-बड़े संगठन हैं और उन्होंने अध्ययन और प्रकाशन का बहुत काम किया भी है।

जनपदीय अध्ययन की जो आँख है उसकी ज्योति भाषा-शास्त्र की सहायता से कई गुना बढ़ जाती है। भाषा-शास्त्र में रुचि रखने वाले व्यक्ति के लिए तो जनपदीय अध्ययन कल्पवृक्ष के समान समझना चाहिए। किसान के जीवन की जो विस्तृत शब्दावली है उसमें वैदिक काल से लेकर अनेक शताब्दियों के शब्द संचित हैं। हम यदि चाहें तो प्राचीन काल की बहुत-सी ऐसी शब्दावली का उद्धार कर सकते हैं जिसका साहित्य में उल्लेख नहीं हुआ। मानव श्रौतसूत्र में हसिया के लिए असिद शब्द प्रयुक्त हुआ है। उसी से लोक में हसिया शब्द बना है। किंतु उसका साहित्यिक प्रयोग वैदिक काल के उपरांत फिर देखने में नहीं आया। केवल हेमचंद्र ने एक बार उसे देशी शब्द मानकर अपनी *देशीनाममाला* में उद्धृत किया है। इसी प्रकार श्रौतसूत्रों में प्रयुक्त इण्ड्र शब्द का रूप लोक में इंडरी या इंडुरी आज भी चालू है यद्यपि उसका साहित्यिक स्वरूप फिर देखने में नहीं आया। गेहूँ की नाली, मूँज या घास आदि से बँटी हुई रस्सी के लिए पुराना वैदिक शब्द यून था जिसका रूपांतर जून किसानों की भाषा में जीवित है। उससे निकला हुआ बर्तन माँजने का जूना शब्द बहुत-सी जगह प्रचलित है।

इस प्रकार के न जाने कितने शब्द भरे हुए हैं। भाषा-शास्त्री के लिए जनपदीय बोलियाँ साक्षात् कामधेनु के समान हैं। दो हज़ार डेढ़ हज़ार वर्षों के बिछड़े हुए शब्द तो इन बोलियों में चलते-जाते हाथ लगते हैं। प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के अनेक धात्वादेशों की धात्री जनपदों की बोलियाँ हैं। हिंदी भाषा की शब्द निरुक्ति के लिए हमें जनपदीय बोलियों के कोशों का सर्वप्रथम निर्माण करना होगा। बोलियों में शब्दों के उच्चारण और रूप जाने बिना शब्द की व्युत्पत्ति का पूरा पेटा नहीं भरा जा सकता। बोलियों की छानबीन होने के उपरांत कई लाभ होने की सम्भावना है। प्रथम तो इन कोशों में हमारे प्रादेशिक जीवन का पूरा ब्योरा आ जाएगा। दूसरे, शब्द नाम ज्योति जीवन के अँधेरे कोठों को प्रकाश से भर देगी। तीसरे, जनपदों के बहुमुखी जीवन के शब्दों को पाकर हमारी साहित्यिक वर्णना-शक्ति विस्तार को प्राप्त होगी।

हिंदी भाषा में जनपदों के भण्डार से लगभग 50 सहस्र नये शब्द आ जाएँगे और भौतिक वस्तुओं एवं मनोभावों को व्यक्त करने के लिए जोगाजोग शब्दावली पाने का हमारा टोटा मिट जाएगा। जनपदों के साथ मिलकर हमारी भाषा को अनेक धातुएँ, मुहावरे और कहावतों का अद्भुत भण्डार प्राप्त होगा। कहावतें हमारी जातीय बुद्धिमत्ता के समुचित सूत्र हैं! शताब्दियों के निरीक्षण और अनुभव के बाद जीवन के विविध व्यवहारों में हम जिस संतुलित स्थिति तक पहुँचते हैं लोकोक्ति उसका संक्षिप्त सत्यात्मक परिचय हमें देती है। साहित्य के अन्य क्षेत्र में सूत्रों की शैली को हमने पीछे छोड़ दिया,

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 828

किंतु लोकोक्तियों के सूत्र हमारे चिरसाथी रहे हैं और आगे भी रहेंगे। लोकोक्तियों के रूप में समस्त जाति की आत्मा एक बिंदु या कूट पर संचित होकर प्रकट हो जाती है। उदाहरण के लिए माँ के प्रति जो हमारी सर्वमान्य पुरानी श्रद्धा है वह इस उक्ति में जो हमें बैसवाड़ा के एक गाँव में प्राप्त हुई कितने काव्यमय ढंग में अभिव्यक्त मिलती है—

स्वाति के बरसे, माँ के परसें तृप्ति होती है

बुंदेलखण्डी एक उक्ति है—

अक्कल बिन पूत कठैंगर से
बुद्धी बिन बिटिया डैंगुर सी

प्रत्येक व्यक्ति में बूझ और समझ के लिए जो हमारा प्राचीन आदर का भाव है, पंचतंत्र-हितोपदेश आदि नीति उपदेशों के द्वारा जिस नीति निपुणता की प्रशंसा की गयी है, जिस बुद्धिमत्ता का होना ही सच्ची शिक्षा है, स्त्री और पुरुष दोनों के लिए जिसकी आवश्यकता है, उस बुद्धि अथवा अक्ल की प्रशंसा में सारे जनपद की आत्मा इस लोकोक्ति में बोल पड़ी है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से कठैंगर संस्कृति का 'काष्ठार्गल' (वह डण्डा जो किवाड़ों के पीछे अटकाव के लिए लगाया जाता है) और डैंगुर 'दण्डार्गल' (वह डण्डा जो पशुओं को रोकने के लिए उनके गले से लटका दिया जाता है) के रूप हैं। प्रत्येक जनपदीय क्षेत्र से कई-कई सहस्र कहावतें मिलने की सम्भावना है। उनका उचित प्रकाशन और सम्पादन हिंदी साहित्य की अनमोल वस्तु होगी। यह भी नियम होना चाहिए कि जनपदीय शालाओं में पढ़ाई जाने वाली पोथियों में स्थानीय सैकड़ों कहावतों का प्रयोग किया जाय। दशम श्रेणी तक पहुँचते-पहुँचते विद्यार्थी को अपनी एक सहस्र लोकोक्तियों का अर्थ सहित अच्छा ज्ञान करा देना चाहिए।

भारतवर्ष का जो कृषिप्रधान जीवन है उसकी शब्दावली प्राचीन समय में क्या थी, साहित्य में इसका लेखा नहीं बचा; किंतु जनपदीय बोलियों के तुलनात्मक अध्ययन से हम उसे फिर प्राप्त कर सकते हैं। इससे प्राचीन भारतीय जीवन पर एक नया प्रकाश पड़ेगा। खेतों की जुताई, बुआई, कटाई और मंड़नी से संबंध रखने वालो शब्दों को पंजाब से बंगाल तक और युक्तप्रांत से गुजरात-महाराष्ट्र तक के जनपदों से यदि हम एकत्र करें तो संस्कृतमूलक समान शब्दों का एक व्यापक ताना-बाना बुना हुआ मिलेगा। कुछ शब्द अपनी-अपनी बोलियों में भिन्न भी होंगे किंतु समान शब्दों के आधार से हम प्राचीन शब्दावली तक पहुँच सकेंगे। खेत काटने वाले के लिए लावा (सं. लावक), गन्ना काटने वाले के लिए कपटा (संस्कृत क्लृप्ता) ऐसे शब्द हैं जो हमें तुरंत पुरानी परम्परा तक पहुँचा देते हैं। आज भी मेरठ के गाँव-गाँव में वे चालू हैं। कुएँ की आन्हर (सं. आंध्रि = चरण), छींटकर बीज बोने के लिए पवेड़ना धातु, (सं. प्रवेरिता), जवान बछिया के लिए ओसर, सं. उपसर्या (गर्भधारण के योग्य) आदि अनेक शब्द प्राचीन परम्परा के सूचक हैं। मध्यकाल के आरम्भ में जब मुसलमान यहाँ आये तो हमारे नागरिक जीवन में बहुत-से परदेशी शब्दों का चलन हो गया और अपने शब्द मर गये। किंतु कृषि शब्दावली में अपना स्वराज्य बना रहा और कचहरी के शब्दों को छोड़कर जिनका केंद्र शहरों में था शेष शब्दावली पुरानी ही चालू रही। इस सत्य को पहचानकर हम भाषा-शास्त्र की सहायता से अनेक जनपदीय शब्दों के साथ नया परिचय पा सकते हैं। आवश्यक शोध और व्याख्यानों के द्वारा इस कार्य को आगे बढ़ाना होगा। कृषि के साथ ही भिन्न-भिन्न पेशेवर लोगों के शब्द हैं जिनका संग्रह और उद्धार करना चाहिए। दिल्ली के अंजुमन तरक्किए उर्दू की ओर से इस प्रकार का कुछ कार्य किया गया था और उस संस्था की ओर से पेशेवर लोगों की शब्दावली आठ भागों में *फरहंगे हस्तलाहात ए पेशेवरान* छप चुकी हैं, किंतु यह काम उससे बहुत बड़ा है और इसमें सीखे हुए भाषा-शास्त्र से परिचित कार्यकर्ताओं की सहायता की आवश्यकता है। अकेले रंगरेज़ की शब्दावली से विविध रंग और हलकी चटकीली रंगतों के लिए लगभग दो सौ शब्द हम प्राप्त कर सकते हैं।

किंतु जनपदीय अध्ययन के लिए शब्दों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण जनपदों के मनोभावों से

28_vasudev_sharan final+++_Layout 1 12/27/2013 7:01 PM Page 829

परिचय प्राप्त करना है। जनपदीय मानव के हृदय में सुख-दुःख, प्रेम और घृणा, आनंद और विरक्ति, उल्लास और सुस्ती, लोभ और उदारता आदि मन के अनेक गुण-अवगुणों से प्रेरित होकर विचारने और कर्म करने की जो प्रवृत्ति है उसका स्पष्ट दर्शन किस साहित्य में हमें मिलता है? जनपदीय मनोभावों का दर्पण साहित्य तो अभी बनने के लिए शेष है। ग्रामवासिनी भारत माता का पुष्कल परिचय प्राप्त करना हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक बड़ी आवश्यकता है। राष्ट्रीय चरित्र और प्रकृति या स्वभाव के ज्ञान के लिए हमें इस प्रकार के जनपदीय साहित्य की नितांत आवश्यकता है। इस दृष्टि से जनपदीय जीवन का चित्र उतारने वाले जितने भी परिचय ग्रंथ या उपन्यास लिखे जाएँ, स्वागत के योग्य हैं। बड़े विषयों पर लिखना अपेक्षाकृत सरल है, किंतु उस लेखक का कार्य कठिन है जो अपने आपको जनपदीय सीमा के भीतर रखकर लिखता है और जो बाहरी छाया से जनपदीय जीवन के चित्र को विकृत या लुप्त नहीं होने देता। इस प्रकार का साहित्य अंततोगत्वा पृथ्वी के साथ हमारे संबंध और आस्था का परिचायक साहित्य होगा।

जनपदीय अध्ययन का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत और गहरा है। उसमें अपरिमित रस और नवीन प्रकाश भी है। जीवन के लिए उसकी उपयोगिता भी कम नहीं है। उस अध्ययन के सफल होने के लिए सधे हुए ज्ञान और समझदारी की भी आवश्यकता है। मानसिक सहानुभूति और शारीरिक श्रम के बिना यह कार्य पनप नहीं सकता। जनपदीय अध्ययन की आँख लोक का वह खुला हुआ नेत्र है जिसमें सारे अर्थ दिखाई पड़ते हैं। ज्यों-ज्यों इस नेत्र में देखने की शक्ति बढ़ती है त्यों-त्यों भूतत्व में छिपे हुए रत्न और कोषों की भाँति जनपदीय जीवन के नये-नये भण्डार हमारे दृष्टिपथ में आते-जाते हैं। जनपदीय चक्षुष्मत्ता-साहित्य का ही नहीं, प्रत्येक मनुष्य का भूषण है। उसकी वृद्धि जीवन की आवश्यकता के साथ जुड़ी है। अशोक के शब्दों में जानपद जन का दर्शन हमारी जनपदीय आँख की सच्ची सफलता है।